International Journal of Applied Research 2015; 1(1): 66-68

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 66-68
www.allresearchjournal.com
Received: 15-12-2014
Accepted: 22-01-2015

डॉ. टेकचन्द मीणा
सहायक आचार्य संस्कृतविभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

Correspondence:
डॉ. टेकचन्द मीणा
सहायक आचार्य संस्कृतविभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

रूपगोस्वामी का मधुररस : एक विवेचन

डॉ. टेकचन्द मीणा

मधुरभक्ति मानवीय मन की अति सहज, प्रिय और रसात्मक प्रवृत्ति है। वैष्णवों ने मनुष्य के सम्पूर्ण रागात्मक जीवन का विषय भगवान् को बनाकर उसे दिव्य राग में परिणत करने पर बल दिया है। प्रिय का प्रिय से संयोग या सम्मिलन ही माधुर्य है। रसराज श्रृघैंर जब स्थूल से सूक्ष्म तथा लौकिक से अलौकिक हो जाता है तब उसे मधुर रस की संज्ञा प्रदान की जाती हैऋ तभी यह अपने शुचि पवित्रा और उज्ज्वल रूप को सार्थक बनाता है। इसी को शुक्ल, पवित्रा, श्री रस तथा उज्ज्वल रस भी कहते हैं। जिस प्रकार कटु, तिक्त आदि रसों में सुमध्ुरता को सर्वोत्कृष्ट कहा गया है, उसी प्रकार साहित्य के परम अलौकिक सर्वोच्च स्तर पर शान्त आदि सभी रसों में श्रृघैंर को ही रसराज माना गया है। श्रृघैं मन्मथ के उद्रेक को कहते हैं और इस श्रृघैं के आगमन का विधयक तथा उत्तम प्रकृति से सम्पन्न रस श्रृघैंर रस के नाम से विख्यात है। परमानन्द से परिपूर्ण इष्ट गुण से युक्त तथा द्दतु माल्यादि को धरण करने वाले रसयुक्त श्रीकृष्ण को श्रृघैंर कहते हैं। रसो वै सः इस युग्म का सि(है, इस सि(रूप से समस्त रसों का प्राकटङ्ढ और लय ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार जल समुद्र से निकलकर मेघ, सर, सरिता आदि रूप से पुनः समुद्र में लय को प्राप्त होता है। इस प्रकार लौकिक जगत् का श्रृघैंर रस, अपने दिव्य गुणों के कारण अलौकिक रूप धरण करता हुआ, भागवतों के परम आध्यात्मिक क्षेत्रा में, माधुर्य रस हो जाता है।

भक्तिरसामृतसिन्ध्ु के पश्चिम विभाग की पंचमी मध्ुर भक्तिरस लहरी में इसका प्रतिपादन किया गया है। यहाँ मध्ुरा रति या प्रियता रति ही अपने योग्य विभावादिकों से परिपुष्ट होकर मध्ुर रस नामक भक्तिरस बन जाती है।[1] मधुरा रति से युक्त इस मध्ुर भक्तिरस में श्रीकृष्ण तथा सुन्दर कटाक्षयुक्त उनकी राध आदि प्रियाएँ आलम्बन[2] हैं। श्रीकृष्ण की प्रेयसियों में राध सबसे श्रेष्ठ है।[3] मुरली की ध्वनि आदि इसमें उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं [4]।

भक्तिरस आचार्यों के अनुसार मधुरभक्तिरस अत्यन्त रहस्यमय है। यद्यपि सामान्य काव्य रस भी सभी के लिए आस्वाद्य नहीं हो पाते हैं, उन रसों का पुण्यलब्ध सहृदय ही आस्वादन करते हैं [5]। भक्तिरस भी सभी सहृदयों के द्वारा आस्वाद्य नहीं होता है अपितु जिसके भीतर पूर्वजन्म की और इस जन्म की उत्तम भक्ति–वासना विद्यमान है उसी के हृदय में इस भक्ति रस का आस्वादन हो सकता है [6]। परन्तु मध्ुररस तो सभी भक्तों के लिए भी सुलभ नहीं है अतः आचार्य रूपगोस्वामी ने भक्तिरस प्रतिपादक भक्तिरसामृतसिन्ध्ु ग्रन्थ में इस वैशिष्ट्य को बतलाते हुए संक्षिप्त में यह प्रतिपादित किया है–

निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरुहत्वादयं रसः।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य विततोघौंऽपि लिख्यते।।[7]

पिफर भी जो लोग मधुररस के आस्वादक हैं उनके लिए आचार्य रूपगोस्वामी ने उज्ज्वलनीलमणि नामक पृथक् उज्ज्वल ;मधुरद्ध रस लक्षण–ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही

मुख्यरसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात्
पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तरेणोच्यते मध्ुरः।[8]

इन वाक्यों से मधुर रस की रहस्यमयता को सूचित किया गया है। जीवगोस्वामी ने भी गोपाल चम्पूकाव्य में लोक संस्कार से काव्यशास्त्रीय रस की उत्कृष्टता के साथ–साथ श्रीकृष्ण एवं गोपियों की श्रृघैंरलीला को सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित किया हैμ

यदमितरसशास्त्रो व्याप्रि जवैदग्ध्यवृन्दं
तदणुमपि न वेत्तुं कल्पते कामिलोकः।
तदखिलमपि यस्य प्रेमसिन्धै न
किप्रि चन्मिथुनमजितगोपीरूपमेतद्विभाति।।[9]

भक्तिरस आचार्यों का शृर्धीर को मधुर नाम प्रदान करने में ' शृर्धीर एव मधुरः परः प्रीादनो रसः' [10] ध्वनिकार आनन्दवर्ध्न की उक्ति कारण सम्भावित प्रतीत होती है। उज्ज्वल ; शृर्धीरद्ध एव नीलमणिः ;श्रीकृष्णद्ध जैसा कि जयदेव ने गीतगोविन्द में कहा हैμ

शृर्धीरः सखि मूर्तिमानिव मधै मुग्धे हरिः क्रीडति।।[11]

आचार्य भरत प्रभृति सभी काव्यशास्त्रियों द्वारा शृर्धीर को प्रथम कहने के कारण आदि रस के रूप में जाना जाता है। पद्मपुराण में श्रीकृष्ण के शृर्धीरमय भक्तिरस को आदिरस तथा सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शित किया गया है–

न राध्किासमा नारी न कृष्णसदृशः पुमान्
वयः परं न कैशोरात्स्वभावः प्रकृतेः परः।
ध्येयं कैशोरकं ध्येयं वनं वृन्दावनं वनम्
श्याममेव परं रूपमादिरेव परो रसः।।[12]

काव्यशास्त्रा में शृर्धीर के रस–राजत्व को सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है, वैष्णवाचार्यों ने भी इसे स्वीकार करते हुए यह कहा है कि शृर्धीर ही जब स्थूल से सूक्ष्म तथा लौकिक से अलौकिक हो जाता है, तब इसे मधुररस की संज्ञा प्रदान की जाती है।
यद्यपि मधुरभक्तिरस के वर्णन में परम्परागत शृर्धीररस के नायक, नायिका और उसके सहायकादि सभी भेदोपभेद उसी प्रकार से प्रतिपादित होते हैं परन्तु लौकिक शृर्धीर के स्थायिभाव विभावरूपों का प्राकृतनायक–नायिकाओं का काम वासना रूप ही आधर होता है परम मधुर भक्तिरस, उसमें भी मधुरा रति परब्रह्म श्रीकृष्ण और उसके प्रियों का परस्पर सच्चिदानन्दमयी रति होती है। इस कारण भक्तों को कामवासना की गन्धमात्रा भी प्रतीत नहीं होती है और श्रीमद्भागवत के अनुसार हृदयस्थ लोकवासना भी इस रस के सम्पर्क से क्षीण हो जाती है।

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरा रतिः।
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः।।[13]

विभावμमधुरभक्तिरस में नायक श्रीकृष्ण तथा नायिका–कृष्ण की प्रिया परस्पर विषयालम्बना एवं आश्रयालम्बन होते हैं। वहाँ शृर्धीररसोपयोगी सुरम्य, माधुर्यादि सभी गुणों से समन्वित श्रीकृष्ण नायक होते हैं।[14] नायक प्रकारों में धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त तथा धीरो(त भेद से चार प्रकार तथा पुनः पति, उपपति भेदों से आठ प्रकार, अनुकूल, दक्षिण, शठ अैर धृष्ट इन चार भेदों के गुणा करने से 32 भेद तथा व्रज में पूर्णतम, मथुरा पूर्णतर और द्वारिका में पूर्ण इन तीन भेदों से पहले 32 भेदों को गुणा करने से 96 नायक भेद श्रीकृष्ण के यहां विषयाश्रयालम्बन से प्रतिपादित हैं। आलम्बनरूप में श्रीकृष्ण की वल्लभाएँ मधुर रस में स्वकीया तथा परकीया भेद से दो प्रकार की है [15]। इनमें भी परकीया के कन्या एवं परोढा[16] – दो प्रकार व्रज में दृष्टिगोचर हुए हैं। इनकी प्रच्छन्न कामता ही श्रीकृष्ण के आनन्द का कारण है। परोढा के पुनः तीन भेद–साध्नपरा, देवी तथा नित्यप्रिया। साध्नपरा के दो भेद–यौथिक्य तथा अयौथिक्य। इनमें यौथिक्य नायिका समूह में रहती है इसके पुनः दो प्रकार मुनि तथा उपनिषद् अयौथिक्य नायिका के भी दो प्रकार–प्राचीन तथा नवीन होते हैं। मधुर रस की आलम्बन रूप श्रीकृष्ण की अन्य प्रेयसियों में राध, चन्द्रावली के साथ विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या भद्रा, तारा, विचित्राा, गोपाली, धनिष्ठा तथा पालिका आदि का भी उल्लेख किया गया है इसके साथ ही खंजनाक्षी, मनोरमा, मंगला, विमला, लीला, कृष्णा, शारी, विशारदा, तारावली, चकोराक्षी, शंकरी तथा कुंकुमा आदि भी श्रीकृष्ण की वल्लभाएँ सुप्रसि(हैं। इस प्रकार ये सभी देवियाँ मधुर रस में आलम्बन रूप होकर प्रतिष्ठित हैं। आलम्बन तथा उद्दीपन रूप में विभाव भी प्रस्तुत ग्रन्थ में विवेचित हैं। श्रीकृष्ण तथा उनकी प्रियाओं के गुण, नाम, चरित्रा, मण्डन, सम्बन्धी और तटस्थ ही यहाँ उद्दीपन विभाव रूप में प्रतिष्ठित है [17]। भक्तिरस के शास्त्रीय विचारों को ध्यान में रखकर ही आचार्य ने अलघङ्कार, उद्भास्वर एवं वाचिक भेद से अनुभाव तत्त्व की भी सम्यक् मीमांसा काव्यशास्त्राानुकूल ग्रन्थ में विस्तार से की है।

अनुभावμ उज्ज्वलनीलमणि के अनुभाव प्रकरण में इसका विवेचन किया है। विद्वज्जन अनुभाव के तीन प्रकार बतलाते हैंμअलघङ्कार, उद्भास्वर और वाचिक। इसमें अलघङ्कार–अर्धैजा, अयत्नजा और स्वभावजा भेद से तीन प्रकार के होते हैं तथा इन्हीं सबके भेदोपभेद करके आहत्य 20 प्रकार के अद्भुत अलघङ्कार उत्पन्न होते हैं [18]। नायक तथा नायिका के शरीर में उद्भासित होने वाले अनुभावों को उद्भास्वर कहते हैं। इसमें कमर की वस्त्रा ग्रन्थि का खुलना, उत्तरीय का खिसक जाना, केश–पाश का ढीला हो जाना, अर्धैं का टूटना, जंभाई लेना, नासिका पफूलना तथा निश्वास लेना आदि कहे गये हैं [19]। आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, संदेश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश, निर्देश तथा व्यपदेश भेद से वाचिक अनुभाव 12 प्रकार के कहे गये हैं [20]।

सात्त्विकभाव μ काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित स्तम्भ, स्वेद, रोमा×च, स्वरभर्धै, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ये आठ सात्त्विकभाव परिगणित हैं। आचार्य रूपगोस्वामी ने उज्ज्वलनीलमणि के सात्त्विक प्रकरण में इनके उल्लेखों के साथ–साथ इनके उदय का कारणादि का उल्लेख भी किया है यथा स्तम्भ की उत्पत्ति में भय, आश्चर्य, विषाद, अमर्ष हेतु होते हैं। स्वेद में हर्ष, भय, और क्रोध कारण होते हैं। अन्य मुख्य रसों के समान मधुररस के भी धूमायित, ज्वलिता, दीप्त, उद्दीप्त ये चार प्रकार सात्त्विकों के होते हैं [21]

व्यभिचारिभावμ आचार्य रूपगोस्वामी ने आलस्य तथा औग्रङ्ग को छोड़कर निर्वेदादि सभी व्यभिचारियों को स्वीकृत किया है।

निर्वेदायास्त्रायस्त्रिंशद्भावा ये परिकीर्तिताः।
औग्रङ्गालस्ये विना ते(त्रा विज्ञेया व्यभिचारिणः।।[22]

स्थायिभावμ *स्थायिभावो(त्रा शृर्धीरे कथ्यते मधुरा रतिः।।*[23]
इस मधुर रस अथवा शृर्धीर रस में मधुरारति स्थायिभाव मानी गयी है। रति के तीन भेद होते हैंμ साधरणी, समंजसा तथा समर्था। साधरणी रति अति सान्द्र नहीं होती और प्रायः यह हरि के प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। सम्भोगेच्छा ही इस रति का अन्तिम लक्ष्य है [24]। पत्नी भाव को अभिमानयुक्त बुि(वाली, गुणादिश्रवण से उत्पन्न होने वाली, कहीं–कहीं संभोगेच्छा से पृथक् तथा सान्द्र समंजसा रति होती है [25]। जब किसी अनिर्वचनीय विशेषता से युक्त रति के साथ संभोगेच्छा तादात्म्यभाव ;अभिन्नताद्ध में रहती है तब उसे समर्था रति कहते हैं [26]। यही समर्था नाम की प्रौढारति उस महाभाव दशा को प्राप्त कर लेती है जो विमुक्त तथा परमोत्कृष्ट भक्तों द्वारा अन्वेषणीय है, यही दृढ या प्रौढरति प्रेम स्वरूप हो जाती है। यही प्रेम अभिवृ(पाकर स्नेह बन जाता है और यही स्नेह वृ(पाकर मान, प्रणय, राग, अनुराग, तथा महाभाव आदि रूप में क्रमशः परिणत हो जाता है, जैसे बीज रूप गन्ना है उससे रस, रस से गुड़, गुड़ से खांड, खांड से शक्कर, शक्कर से मिश्र और मिश्री से ओला बन जाता है [27]। ध्वंस के कारण के

रहने पर भी सर्वथा ध्वंस से रहित जो प्रिया–प्रियतम का भाव–बन्धन होता है उसे ही प्रेम कहते हैं [28]। वह प्रेम प्रौढ़, मध्य एवं मन्द प्रभेद से तीन प्रकार का कहा गया है [29]। प्रेम की उपलब्धि रूप दीपक को प्रदीप्त करने वाला प्रेम ही पराकाष्ठा को प्राप्त कर हृदय को द्रवित करता हुआ, स्नेह की संज्ञा को प्राप्त करता है। इस स्नेह के उदय होने पर दर्शनादि में कभी भी तृप्ति नहीं होती [30]। यह स्नेह घृत तथा मधु भेद से दो प्रकार का होता है। इसी प्रकार मान, प्रणयादि के भी भदोपभेद का विवेचन आचार्य रूपगोस्वामी ने स्थायिभाव प्रकरण में किया है।

मधुर भक्तिरस विप्रलम्भ तथा सम्भोग भेद से दो प्रकार का होता है। नायक तथा नायिका के एक साथ रहने पर या अलग रहने पर परस्पर अभीष्ट आलिंगन आदि की अप्राप्ति में भाव प्रकर्षता को प्राप्त करता हैμ संभोग में वृ(करने वाले उस भाव को विप्रलम्भ कहते हैं। बिना विप्रलम्भ के संभोग की पुष्टि नहीं होती है। गर्म पानी में कपड़े को औटाने पर ही कपड़े का रंग पक्का होता है। विप्रलम्भ के चार भेद होते हैं–पूर्वराग, मान, प्रेम–वैचित्य तथा प्रवास [31]।

आचार्य रूपगोस्वामी की यह विनय सचमुच महान् है जिसमें उन्होंने यह मधुर रस का साधैांपाधैं विश्लेषण करने के बाद भी कहा है कि मैंने इस मधुर रस के समुद्र का स्पर्शमात्रा ही किनारे रहकर किया है उनकी दृष्टि में यह मधुर रस समुद्र सर्वथा अप्रवेश्य हैμ

अतलत्वादपारत्वादाप्तोऽसौ दुर्विगाहताम्।
स्पृष्टः परं तटस्थेन रसाब्धिर्मधुरो मया।।[32]

1. आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि।
   मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुररातिः।। भरसि. 3/5/1
2. अस्मिन्नालम्बनः कृष्णः प्रियास्तस्य च सुभ्रुवः। वही, 3/5/2
3. प्रेयसीषु हरे रासु प्रवरा वार्षभानवी। वही, 3/5/4
4. उद्दीपना इह प्रोक्ता मुरलीनिस्वनादयः। वही 3/5/4
5. पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति यौगिवद्रससन्ततिम्। सा.द. 79
6. प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना।
   एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते। भरसि. 2/1/7
7. वही, 3/5/2
8. उ.नी. नायकभेद प्रकरण, 2
9. गो.च.का., 24
10. ध्वन्या. 2/7
11. गी.गो. 1/4/10
12. प.पु., पातालखण्ड, 77/52–53
13. उ.नी. नायकभेद प्रकरण, 3
14. अयं सुरम्यो मधुरः सर्वसल्लक्षणान्वितः।
    बलीयान्नवतारुण्यो वावदूकः प्रियंवदः।।
    सुधीः सप्रतिभो धीरो विदग्ध्श्चतुरः सुखी
    इत्यादयोऽस्य शृंगारे गुणा कृष्णस्य कीर्तिताः।। वही, 5–7
15. उ.नी., हरिवल्लभा प्रकरण 1–1/2
16. वही, 17–1/2
17. उ.नी. उद्दीपनविभाव, 1
18. वही, अनुभाव प्रकरण, 1–5
19. वही, 63
20. वही, 71, 72
21. उ.नी. सात्त्विकभाव, 32–35
22. वही, व्यभिचारिभाव 1
23. वही, स्थायिभाव प्रकरण, 1
24. नातिसान्द्रा हरेः प्रायः साक्षाद्दर्शनसम्भवा।
    सम्भोगेच्छानिदानेयं रतिः साधरणीमता।। वही, 39
25. पत्नीभावाभिमानात्मा गुणादिश्रवणादिजा।
    क्वचिद् भेदित सम्भोग तृष्णा सान्द्रा समंजसा।। उ.नी., स्थायिभाव प्रकरण, 42
26. कंचिद्विशेषमायान्त्या सम्भोगेच्छा ययाभितः।
    रत्या तादात्म्यमापन्ना सा समर्थेति भण्यते।। वही, 46
27. वही, 51, 53, 54
28. सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
    यद् भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः वही, 57
29. वही, 60
30. वही, 73
31. स विप्रलम्भः सम्भोग इति द्वेधेज्ज्वलो मतः।
    ग ग ग ग ग
    प्रवासश्चेति कथितो विप्रलम्भश्चतुर्विधः। उ.नी., शृंगारभेद, 1–4
32. वही, 69